International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 11 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अध्यात्ममूलक सद्गुण विचार : एक विश्लेषण

डॉ0 अंजना कुमारी
एम.ए., पीएच.डी. (दर्शनशास्त्र)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारतीय चिन्तन – धारा में सद्गुण विचार को आध्यात्मिक आधार प्रदान करते हुये व्यावहारिक धरातल पर उतारा गया है। भारतीय जीवन–दर्शन में मानव जीवन के चार उद्देश्य बतलाये गये हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष पारलौकिक जीवन से सम्बद्ध है जबकि धर्म, अर्थ और काम इहलौकिक जीवन से। धर्म, अर्थ और काम को सम्मिलित रूप से 'त्रिवर्ग' की संज्ञा दी गई है। देखा जाय तो इस त्रिवर्ग में 'काम' अर्थात् इन्द्रिय–सुख ही मुख्य पुरूषार्थ है तथा इसके हेतु स्वरूप 'अर्थ' पुरूषार्थ है। किन्तु यह द्रष्टव्य है कि यहाँ काम और अर्थ धर्ममूलक होने पर ही पुरूषार्थ रूप में मान्य है। इस प्रकार भारतीय जीवन में मानव के भावनात्मक पक्ष को प्रमुखता देते हुये इसे 'धर्म' के अधीन रखा गया है। 'काम' यहाँ मानव व्यक्तित्व के भावनात्मक पक्ष का द्योतक है जबकि 'धर्म' उसके बौद्धिक पक्ष का। यहाँ 'धर्म' को एक व्यापक अर्थ देते हुये परिभाषित किया गया है– 'ध्रियते यः स धर्मः' अर्थात् जिसे धारण किया जाय वही धर्म है। मानव के संदर्भ में देखा जाय तो वैसे अच्छे गुण अर्थात् सद्गुण को धारण करना है जो व्यक्ति के इहलौकिक जीवन में पूर्णता प्रदान करते हुये अन्ततः उसे परलौकिक जीवन की पूर्णता की ओर अग्रसारित कर दे– 'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'। इस प्रकार 'धर्म' यहाँ आध्यात्मिक मूल्य का द्योतक है। प्रायः सभी धर्म–दार्शनिक विद्वान् 'धर्म' को आन्तरिक जगत् का संचालक मानते हैं तथा इनके नियम को ही नैतिक नियम की संज्ञा देते हैं। जिस प्रकार वाह्य जगत् की संचालिका प्रकृति है तथा उसके संचालक नियमों को प्राकृतिक नियम कहते हैं उसी प्रकार आन्तरिक जगत् का संचालक धर्म है और इसके नियम को नैतिक नियम कहते हैं। इन नियमों का पालन करना

मानव का कर्त्तव्य है। इन सद्कर्मों या शुभ–संकल्पों का निरन्तर अभ्यास व्यक्ति के व्यक्तित्व पर या मन पर कुछ संस्कार छोड़ जाते हैं।, इन संस्कारों के स्थायी दृढ़ ऐक्य को 'सद्गुण' की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार कर्त्तव्य वाह्य कर्मों की ओर संकेत करता है जबकि सद्गुण आन्तरिक चरित्र की ओर।

आज के नीतिवादी सिर्फ सैद्धान्तिक धरातल पर ही देखे जाते हैं। परिणामतः उनकी नीति किसी भी क्षण नष्ट हो सकती है। वाह्य प्रलोभन के कारण ऐसे नीतिवादी का आन्तरिक साम्य बिगड़ जाता है तथा उससे लड़ने की भीतरी शक्ति समाप्त हो जाती है। फलस्वरूप नैतिकता किसी भी क्षण टूट जाता है। स्पष्टतः, नैतिकता में प्रतिष्ठित होने के लिये आन्तरिक शक्ति को जागृत किया जाना चाहिये जिससे प्रतिक्षण अपने अन्दर के विरोधी भावों से लड़कर आन्तरिक साम्य ठीक रखा जा सके। ऐसी स्थिति में ही वाह्य साम्य या नैतिकता स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य का लक्ष्य यदि सिर्फ नीतिवाद हो तो उसमें आपेक्षिता का दोष रह जाता है क्योंकि चोरी न करने की अपेक्षा चौर्यभाव को दूर करना ज्यादा सार्थक एवं श्रेयस्कर है। यह तभी संभव है जब नीतिवाद का आदर्श अध्यात्मवाद हो। नीतिवाद का आदर्श अध्यात्मवाद होने पर व्यक्ति को सद्गुण के पथ से विचलित होने की संभावना क्षीण हो जाती है क्योंकि वहाँ आपेक्षिता का दोष नहीं रह जाता तथा चौर्य, मिथ्या आदि जैसे अशुभ वृत्तियों का स्वतः धीरे–धीरे क्षय हो जाता है।

सामान्यतया अध्यात्मवाद को मानवतावाद के विरोधी सिद्धान्त के रूप में माना जाता है तथा यह कहा जाता है कि अध्यात्मवाद में मानव को केन्द्र में रखकर उससे अलग आध्यात्मिकता रूपी पारलौकिक विश्व की रचना की गई है और मानव को उस पर बलिदान कर दिया गया है। वस्तुतः इस दृष्टिकोण के पीछे भौतिकवादी धारणा ही अधिक प्रबल दिखाई देती है। मानवतावादी दृष्टिकोण ऐहिक जीवन तक ही अपना ध्यान सीमित रखना चाहता है तथा प्रकृति के सिद्धान्तों के अनुरूप अपने आचरण को ढ़ाल लेना ही मानव का नैतिक कर्त्तव्य मानता है। मानवतावादी नीति–दर्शन मनुष्य को एक मनो–भौतिक एवं सामाजिक प्राणी के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि में नीतिवाद या तो समाजशास्त्र की एक शाखा है या मनोविज्ञान का एक

विभाग। लेकिन यदि मनुष्य प्राकृतिक नियमों के अधीन है तो नैतिक सद्गुण, यथा, आत्म–त्याग एवं आत्म–बलिदान, जैसे प्रत्ययों को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। मनुष्य केवल शरीर ही नहीं है जिसे खिलाया–पिलाया, ओढ़ाया–पहनाया या आवासित किया जाय। वह आत्मा भी है जिसकी कुछ उच्च आकांक्षाएँ हैं। जिन लोगों को भौतिक सभ्यता की नियामकें तथा सारी सुख–सुविधाएँ प्राप्त हैं, आज वे लोग भी हताश एवं कुंठित हैं क्योंकि विकास की प्रक्रिया बिना किसी निरपेक्ष उद्देश्य के उत्साहहीन एवं निरर्थक हो जाती है। मानव केवल इस तथ्य से संतुष्ट नहीं हो सकता कि केवल प्राकृतिक नियमों के अनुरूप ढ़ालकर वह अपने को भौतिक साधनों से पूर्ण कर लें तथा अपने को परोपकार एवं करूणा जैसी भावनाओं पर उत्सर्ग कर दे। समानता तथा विकास जैसे प्रत्यय अपने आप में सापेक्ष एवं अपूर्ण लक्ष्य है जिन्हें कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि शुभेच्छा, विशुद्ध प्रेम और वैराग्य हमारे आदर्श हैं तो हमारे आचार–नीति की जड़ आध्यात्मिकता की भावना में होनी चाहिये।

भारतीय चिन्तन–परम्परा में चार्वाक को छोड़कर सभी नास्तिक–आस्तिक धर्म–दर्शनों का आदर्श आध्यात्मिक उत्कृष्टता की प्राप्ति बतलाया गया है तथा इसके लिये आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में विभिन्न योग–मार्गों का विधान किया गया है। ऐसा आरोप लगता रहा है कि ये योग–मार्ग पारलौकिक नैतिकता को स्थापित कर रहे हों, किन्तु इनका व्यावहारिक पक्ष इस तथ्य का साक्षी है कि यदि यहाँ पारलौकिक नैतिकता के भाव हैं भी तो उसके मूल में सद्गुण विचार ही प्रखर हैं, जो वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का आधार है। सद्गुण विचार, जो आन्तरिक शुभत्व का प्रतीक है, भारतीय जीवन–दर्शन में इस तरह गुम्फित है कि पारलौकिक सत्ता की ओर अग्रसर होने के क्रम में भी इसके अनुपालन की अनिवार्यता है।

जैन धर्म–दर्शन में 'अर्हत्' की प्राप्ति मानव जीवन का चरमलक्ष्य स्वीकारा गया है तथा इसके लिये 'त्रिरत्न' की सम्यक् साधना आवश्यक माना गया है– 'सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः'। जैन आचार्यों ने मानवीय चेतना के तीन पहलुओं– भाव, ज्ञान एवं संकल्प के आधार पर त्रिविध साधना–मार्ग का विधान किया है। चेतना के भावात्मक, ज्ञानात्मक एवं संकल्पनात्मक पक्ष को सही दिशा में नियोजित करने के लिये क्रमशः सम्यक् दर्शन,

सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र का विधान किया गया है। त्रिरत्न में भी यहाँ सम्यक् चरित्र का विशेष महत्त्व है जिसकी सिद्धि के लिये पंचमहाव्रतों – अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के पालन का विधान है। जैन धर्म–दर्शन में इन सद्गुणों की सूक्ष्म व्याख्या की गई है।

बौद्ध धर्म–दर्शन में 'बोधिसत्व' की प्राप्ति को जीवन का आदर्श–रूप माना गया है तथा इसके लिये 'त्रिरत्न'[24]– शील, समाधि और प्रज्ञा–का विधान है जो आष्टांगिक मार्ग के अन्तर्गत आ जाता है। आष्टांगिक मार्ग का पथिक 'शील' द्वारा शारीरिक शोधन करता है, जिसके अन्तर्गत समस्त सात्विक कर्म समाहित हैं। शील का अभ्यास करते हुये साधक को अपने कार्य और वचन का पूरा संयम रखना होता है। उसे प्राणियों की हिंसा, चोरी करना, मिथ्याचार, असत्य भाषण और मादक द्रव्यों से विरत रहना होता है। बौद्ध धर्म में साधक को शील का किसी भी प्रकार से परित्याग करना निषिद्ध माना गया है। इस प्रकार सद्गुणों को धारण कर साधक 'बोधिसत्व' को प्राप्त करता है। बोधिसत्व का 'स्वार्थ' इतना विस्तृत होता है कि उसके 'स्व' की परिधि में जगत् के समस्त जीव समा जाते हैं। उसके प्रधान गुण होते हैं– महामैत्री तथा महाकरूणा।

हिन्दू–धर्म में भी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति मानव जीवन का परम उद्देश्य है। हिन्दू–धर्म वस्तुतः अनुभूतिमूलक धर्म है और एकतत्वता के अभेदमूलक भाव का सृजन ही इसका चरमलक्ष्य है। यहाँ यह माना गया है कि ईर्ष्या से परे, कल्याण करने के भाव को प्रेरित करने से ही आध्यात्मिक ज्ञान का उदय सम्भव है और आध्यात्मिक ज्ञान के उदय से ही अभेदमूलक भाव समृद्ध हो सकता है। हिन्दू–धर्म में आध्यात्मिक पूर्णता का चाहे कोई भी मार्ग क्यों न हो, बिना आत्म–नियंत्रण की नैतिक–सम्पदा तथा आत्म–संतोष अथवा दुःख सहने की शक्ति जैसे सद्गुणों का धारण किये बिना कोई व्यक्ति इस आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार यहाँ आन्तरिक शुभत्व को ही वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का आधार माना गया है। हिन्दू–धर्म में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य जितना प्रखर है उतना शायद किसी अन्य धर्म में प्रखर नहीं है और वह है त्याग द्वारा अमृतत्त्व की प्राप्ति – 'त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः'। चाहे कोई भी धर्म–विधि क्यों न हो, उसके द्वारा चरम लक्ष्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक उसमें त्याग का भाव न हो। हिन्दू–धर्म में आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में निहित ज्ञानयोग, भक्तियोग,

कर्मयोग तथा ध्यानयोग भी त्याग पर ही आधारित है। अतः त्याग द्वारा ही अमृतत्त्व की प्राप्ति वास्तविक अर्थ में सम्भव है। यही सनातन धर्म का मूलमंत्र है जिसे हिन्दू– धर्मावलम्बी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के क्रम में अनिवार्य रूप से धारण करते हैं। चूँकि यह नियम सनातन है इसीलिये हिन्दू धर्म–ग्रन्थों एवं दार्शनिक पद्धतियों में इसे सम्यक् रूप से समादृत देखे जाते हैं।

भारतीय धर्म–ग्रन्थों में आध्यात्मिक मूल्य के रूप में स्थापित सद्गुण–विचार मानव के लिये आज भी उतने ही आवश्यक हैं जितने प्राचीन युग में थे। अतिआधुनिकता के इस युग में मूल्यों का मूल्यान्तरण हो रहा है जिसके कारण सारे मूल्य टूट रहे हैं। मूल्यों के क्षरण के कारण ही सर्वत्र अशांति व्याप्त है। इन नैतिक मूल्यों का, जो सफल जीवन की कुंजी है तथा मानवता का आधार है, महत्त्व कम होने के कारण ही आज समाज एवं राष्ट्र में अस्तव्यस्तता एवं भ्रष्टाचार–दुराचार व्याप्त है। नैतिक मूल्यों से रहित होते जा रहे इस विश्व में कुंठारहित एवं शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिये मानव को अपने सांसारिक–जीवन एवं आध्यात्मिक–जीवन में समरूपता लाना चाहिए। सांसारिक सुखों की प्राप्ति के समय भी उन्हें अपने उच्चतम आदर्श के अनुरूप आचरण करना ही एकमात्र विकल्प है क्योंकि जब तक हम अपने जीवन में इन महानतम् नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान नहीं देंगे तब तक मानव तो प्रगति करेगा, मानवता नहीं।

सद्गुणः विविध पक्ष

'सद्गुण' एक प्रमुख नैतिक सम्प्रत्यय है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों दर्शनों में इसकी व्यापक विवेचना हुई है। नैतिक मूल्यों के तेजी से हो रहे क्षरण को देखते हुए वर्तमान में इसकी अधिकाधिक विवेचना की प्रासंगिकता काफी बढ़ गई है। सद्गुण की सम्यक् विवेचना हेतु इसके विविध पक्षों का विश्लेषण अपेक्षित होगा। इस रूप में यहाँ सद्गुण का आशय क्या है, मानवीय व्यक्तित्व में इसका उद्भव कैसे होता है, इसके अर्जन का तरीका क्या है, चरित्र के साथ इसका क्या संबंध है, क्या यह शिक्षणीय है इत्यादि प्रश्नों पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। मैं अध्याय के इस खण्ड में सद्गुण संबंधी इन्हीं विविध पक्षों का विश्लेषण प्रस्तुत करूँगा।

सद्गुण का आषय

नीतिशास्त्र का प्रमुख कार्य नैतिक पदो ंके माध्यम से मनुष्य के एच्छिक कर्मों और चरित्र का मूल्यांकन करना है। उचित, कर्तव्य शुभ आदि नैतिक शब्दों की भांति सद्गुण शब्द का प्रयोग भी मानवीय आचरण और चरित्र के मूल्यांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विद्वानों के अनुसार 'सद्गुण' का अंग्रेजी पर्याय वर्च्यू है जो यूनानी शब्द एरेटे का समानार्थी है। एरेटे का अर्थ होता है श्रेष्ठता अथवा उत्कृष्टता। नैतिक संदर्भ में सद्गुण मनुष्य की वह श्रेष्ठ स्थाई मनोवृत्ति है, जिसका विकास करने के लिए उसे स्वयं निरंतर प्रयत्न करना पड़ता है और जो सदैव उसके आचरण में अभिव्यक्त होती है। सद्गुण से प्रेरित कार्य कभी–कभी नहीं अपितु बार–बार किया जाता है। अर्थात सतत् प्रयास और अभ्यास द्वारा विकसित उत्कृष्ट मनोवृत्ति का, व्यक्तित्व के रूप में प्रतिफलन, चरित्र की उत्कृष्टता है। प्रो0 पॉल जेनेट के अनुसार इच्छापूर्वक आंतरिक उत्कर्ष की बुद्धि का नाम सद्गुण है। कांट की दृष्टि में इच्छा एवं स्वार्थ पर जिस अनुपात में हम विजय प्राप्त करते हैं उसी अनुपात में सद्गुण अर्जित करते हैं। वस्तुतः सद्गुण आत्मा के नैतिक विकास का सूचक है। चरित्र का जितना अधिक नैतिक विकास होता है उतना ही अधिक सद्गुणों की मात्रा बढ़ती है। अतः सद्गुण चरित्र का आभूषण है। कुछ प्रमुख सद्गुण हैं– प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति, साहस, ईमानदारी, परोपकारिता, लोककल्याण–भावना, सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता, प्रतिज्ञापालन, देशप्रेम, न्यायप्रियता आदि। ये सभी सद्गुण ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो उचित कर्मों को ही करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं। दुर्गुणों के अन्तर्गत द्वेष, द्रोह, बेइमानी, वैमनस्य, देशद्रोह, अर्थलोलुपता आदि को गिना जा सकता है; क्योंकि ये ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो अनुचित कर्मों को करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं।

उद्भव का तार्किक विष्लेषण

नीतिशास्त्र में समाजिक जीवन जीने वाले सामान्य मनुष्यों के ऐच्छिक कर्म अर्थात् जानबूझकर अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति से किए गए कर्म का कुछ नियमों या मानकों के आधार पर

मूल्यांकन किया जाता है। यदि उसके कर्म नियम के अनुकूल होते हैं तो उसे उचित कर्म और यदि नियम के विपरित होते हैं तो उसे अनुचित कर्म कहते हैं। हमें उचित कर्म का अभ्यास करना चाहिए जबकि अनुचित कर्म का त्याग करना चाहिए। नैतिक एवं विवेकशील प्राणी होने के कारण हमें जो करना चाहिए वह कर्तव्य है। प्रत्येक व्यक्ति का समाज, राष्ट्र और मानवता के प्रति कर्तव्य होता है। जो उचित कर्म का सम्पादन करता है उसे समाज, राष्ट्र एवं ईश्वर पुरस्कृत करते हैं जबकि अनुचित कर्म सम्पादन करने वाले को दण्डित किया जाता है। ध्यातव्य है कि व्यक्ति जिस ढ़ंग के कर्म (उचित या अनुचित) को बार–बार करता है उस ढंग के कर्म करने के वह अभ्यस्त हो जाता है अर्थात् वैसी कर्म सम्पादन की आदत हो जाती है। आदत से चरित्र का निर्माण होता है। यदि उचित कर्म करने की आदत हो जाए तो सद्चरित्र का निर्माण होता है जिसे सद्गुणी कहा जाता है तथा अनुचित कर्म करने की आदत से दुष्चरित्र का निर्माण होता है जिसे दुर्गुण कहते हैं। अतः अभ्यासपूर्वक अनुचित कर्मों के पालन से मनुष्य में एक प्रकार का अनैतिक गुण विकसित होता है जिसे दुर्गुण कहते हैं। दुर्गुण चरित्र की निकृष्टता को दर्शाता है। जबकि, अभ्यासपूर्वक कर्तव्य का पालन करने से एक प्रकार का नैतिक गुण विकसित होता है जिसे सद्गुण कहा जाता है। सद्गुण चरित्र की उत्कृष्टता को दर्शाता है। सद्गुणी व्यक्ति को पुण्यात्मा तथा दुर्गुणी व्यक्ति को पापात्मा कहा जाता है।

सद्गुण अर्जित प्रवृत्ति के रूप में

सद्गुण संबंधी उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नैतिक दृष्टि से जो प्रवृत्ति अच्छी होती है उसे सद्गुण कहा जाता है और जो प्रवृत्ति बुरी होती है उसे दुर्गुण कहा जाता है।[30] नैतिक दृष्टि से अच्छी या बुरी प्रवृत्तियाँ वे प्रवृत्तियाँ हैं जो अर्जित होती हैं। प्रवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं–जन्मजात एवं अर्जित। मनुष्य अनेक मूलभूत प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेता है– जैसे भूख, प्यास आदि। ये जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं। मनुष्य समेत सभी प्राणियों का जीवन जन्म से मृत्युपर्यन्त बदलता रहता है, विकसित होता रहता है। कोई मनुष्य या पशु अपनी युवावस्था या वृद्धावस्था में उसी रूप नहीं रहता जिस रूप में वह जन्म के समय रहता है। मनुष्य या किसी प्राणी के जीवन में यह परिवर्तन वातावरण के सहयोग से होता है। मनुष्य या कोई अन्य प्राणी जन्म के बाद

अपनी जन्मजात क्षमताओं के आधार पर वातावरण के सहयोग से बहुत कुछ सीख लेता है। उसे उसकी जन्मजात क्षमताएँ तो आनुवंशिक रूप से विरासत में मिलती हैं, पर उनके आधार पर वह अपना उत्तरोत्तर विकास वातावरण के सहयोग से वातावरण के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया करते हुए करता है। अतः मानव के विकसित होने का अर्थ होता है वातावरण से प्रभावित होकर उसके साथ क्रिया–प्रतिक्रिया करते हुए मानव द्वारा नई–नई बातों का सीखा जाना। मनुष्य अपनी सुरक्षा के लिए घर बनाना, अपनी भूख की शांति के लिए अन्न उपजाना, अपने मनोरंजन के लिए उपयुक्त साधन जुटाना, अपनी जिज्ञासा की शांति के लिए ज्ञानार्जन करना आदि सीख लेता है। ये सभी मनुष्य जो कुछ सीखता है उसके संबंधित आयाम हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मनुष्य जो कुछ सीखता है उसके संबंध में न तो वह हर समय सोचता रहता है और न ही वह उसके अनुरूप सदा क्रियाशील रहता है। वह सोचता तभी है या क्रियाशील तभी होता है जब वैसा करने के लिए उसके सामने उपयुक्त अवसर उपस्थित होता है।

तो प्रश्न उठता है कि मनुष्य जिस समय सीखी हुई बात के बारे में नहीं सोच रहा होता है या उसके अनुरूप वह क्रियाशील नहीं रहता है, उस समय वह सीखी हुई बात कहाँ और किस रूप में रहती है? इसका उत्तर यह है कि उस समय वह सीखी हुई बात जो उसकी अर्जित क्षमता है उसके मन में प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान रहती है। यही प्रवृत्ति अर्जित प्रवृत्ति है। इस प्रकार अर्जित प्रवृत्ति वह क्षमता है जो मनुष्य अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों के आधार पर वातावरण के सहयोग से हासिल करता है। परन्तु, चूँकि वह क्षमता क्रियाशील रूप में नहीं रहती, इसलिए उसे प्रवृत्ति कहते हैं।

वस्तुतः किसी वस्तु की दो अवस्था हुआ करती है। एक को उसकी क्रियाकरण या घटना अवस्था कहते हैं और दूसरी को उसकी संभावना अवस्था कहते हैं। चीनी को जब पानी में डालते हैं, तो वह घुलने लगती है। यह चीनी की घटना–अवस्था या क्रियाकरण अवस्था है। पर जब चीनी पानी में नहीं है, वरन् उसे बर्तन में रखा जाता है, तो उस समय चीनी में घुलने की क्षमता रहती है। यहाँ चीनी की घुलनशीलता इसकी संभावना अवस्था है। उसी तरह जब हम किसी सीखी हुई बात के बारे में सोचते रहते हैं, तो वह उसकी घटना अवस्था या

क्रियाकरण अवस्था है। परन्तु जब हम उसके बारे में नहीं सोचते हैं और न उसके अनुरूप कुछ करते हैं, तो वह संभावना अवस्था में रहती है जो हमारे मन में क्षमता या प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान रहती है। प्रवृत्ति अस्फुट होती है, पर जब वह क्रियाकरण हो जाती है, तो वह स्फुट हो जाती है। क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति के क्रोध की प्रवृत्ति उस समय अस्फुट रहती है जब वह क्रोध नहीं कर रहा होता है, पर जब वह क्रोध करने लगता है, तो उस समय उसके क्रोध की प्रवृत्ति स्फुट हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वातावरण के सहयोग से अर्जित प्रवृत्तियाँ नैतिक होती हैं। यहाँ इन्हें नैतिक कहने का यह अर्थ नहीं है कि ये सभी अच्छी या शुभ होती हैं। यहाँ इन्हें नैतिक कहने का अर्थ यह है कि ये नैतिक मूल्यांकन का विषय होती हैं यानी 'शुभ' और 'अशुभ', 'अच्छी' और 'बुरी' के रूप में इनका मूल्याकंन किया जा सकता है। यह 'नैतिक' शब्द का व्यापक अर्थ है। केवल 'शुभ' या 'उचित' को नैतिक कहना 'नैतिक' शब्द का संकुचित अर्थ है। यह निर्विवाद है कि मनुष्य की कुछ अर्जित प्रवृत्तियाँ शुभ या अच्छी होती हैं, और कुछ बुरी या अशुभ होती हैं। किसी भूखे व्यक्ति को भोजन उपलब्ध कराने की प्रवृत्ति अच्छी होती है, परंतु किसी निर्दोष व्यक्ति को मारने की प्रवृत्ति बुरी है। हम जानते हैं कि 'सद्गुण' अच्छी प्रवृत्ति को कहते हैं तथा बुरी प्रवृत्ति को 'दुर्गुण' कहते हैं। यहाँ पुनः स्मरणीय है कि अच्छी प्रवृत्ति का अर्थ है नैतिक दृष्टि से अच्छी और नैतिक दृष्टि से अच्छी प्रवृत्ति अर्जित प्रवृत्ति होती है। अतः जो अर्जित प्रवृत्ति शुभ या अच्छी होती है, उसे सद्गुण कहते हैं। कुछ प्रमुख सद्गुण हैं– प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति, साहस, इमानदारी, परोपकारिता, लोककल्याण भावना, सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता, प्रतिज्ञापालन, देश–प्रेम, न्यायप्रियता आदि। ये सभी सद्गुण ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो उचित कर्मों को ही करने के लिए उत्प्रेरित करती है। दुर्गुणों के अन्तगर्त द्वेष, द्रोह, बेइमानी, वैमनस्य, देशद्रोह, अर्थलोलुपता आदि को गिना जा सकता है; क्योंकि ये ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो अनुचित कर्मों को करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं।

यहाँ स्वभावतः प्रश्न उठता है कि सद्गुणों को कैसे अर्जित किया जा सकता है? हम सद्गुणों को किस प्रकार हासिल कर सकते हैं? हम जानते हैं कि सद्गुण मनुष्य की अर्जित की

हुई शुभ प्रवृत्तियाँ हैं। इसलिए सद्गुणों को अर्जित करने का मतलब होता है अच्छी प्रवृतियों, शुभ संस्कारों को अर्जित करना। अर्जित प्रवृत्तियों को संस्कार भी कहा जाता है। तो प्रश्न है कि हम अच्छी प्रवृत्तियों एवं अच्छे संस्कारों को किस प्रकार अर्जित कर सकते हैं? अब तक के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रवृत्तियों को मनुष्य अपनी जन्मजात क्षमताओं के आधार पर वातावरण के सहयोग से अर्जित करता है। वातावरण दो रूपों में मनुष्य को प्रवृत्तियों को अर्जित करने में सहयोग करता है। एक है उसका भौतिक रूप जिसमे वायु, जल, पेड़, पौधे आदि शामिल रहते हैं और दूसरा है उसका सामाजिक रूप जिसमें माता–पिता, गाँव–नगर, परिवार–समाज, रीति–रिवाज, धर्म, सांस्कृतिक परम्परा आदि शामिल रहते हैं। इन दोनो रूपों में इसका सामाजिक रूप ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रवृत्तियों को अर्जित करने में इसकी अहम भूमिका होती है। जैसा वातावरण होता है हम वैसा ही सीखते हैं। अर्जित करने का अर्थ सीखना है, क्षमताओं को हासिल करना है। यदि हमारा वातावरण, हमारा परिवेश अच्छा रहता है, तो हम अच्छी–अच्छी बातों को सीखते हैं यानी हम अच्छी प्रवृत्तियों को अर्जित करते हैं और यदि हमारा वातावरण अच्छा नहीं रहता है तो हम गलत–गलत बातों को सीखते हैं। फलतः हम शुभ प्रवृत्तियों को, सद्गुणों को अर्जित नहीं कर पाते। अतएव सद्गुणों को अर्जित करने के लिए जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है वह है हमारा सामाजिक वातावरण, हमारा सामाजिक परिवेश।

यहाँ प्रश्न उठता है कि सामाजिक वातावरण किस प्रकार सद्गुण अर्जन की प्रक्रिया में सहायक होता हैं। हमने देखा है कि सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत शामिल हैं– माता–पिता, गाँव–नगर, रीति–रिवाज, धर्म संस्कृति आदि। सद्गुण अर्जन में ये सभी अपने–अपने ढंग से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रक्रिया की शुरूआत परिवार में होती है जहाँ माता–पिता बच्चों के लालन–पालन के क्रम में ही उनमें अच्छे–अच्छे संस्कार डालना प्रारम्भ कर देते हैं। बच्चा प्रारम्भ में जो कुछ सीखता है वह अपने माता–पिता से ही सीखता है। बच्चा जब कुछ बड़ा होकर समझने योग्य होता है, तो उसके माता–पिता उसे सिखाते हैं कि हमें झूठ नहीं बोलना चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए, दुःखियों की मदद करनी चाहिए, अपना काम ईमानदारीपूर्वक करना चाहिए, दूसरों के प्रति प्रेम–भाव रखना चाहिए, घृणा नहीं करनी चाहिए आदि आदि। माता–पिता की इन बातो का बच्चे के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चा माता–पिता के आचरण

और व्यवहार से ही बहुत कुछ सीखता है। ऐसे उदाहणों की कमी नहीं है जहाँ माता–पिता की अच्छी शिक्षा की बदौलत उनकी सन्तानों ने सद्गुणों का विपुल भण्डार अर्जित किया और दुनिया में काफी नाम कमाया। माता–पिता के अतिरिक्त बच्चे के आस–पड़ोस के लोगों के आचरण और व्यवहार भी बच्चे पर गहरा प्रभाव डालते हैं। फिर उसके शिक्षा संस्थान और आगे चलकर उसके कार्य–स्थल के वातावरण, रीति–रिवाज, धार्मिक प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक परम्पराएँ आदि भी सद्गुणों को अर्जित करने में महती भूमिका निभाती है।

सद्गुण और चरित्र

सद्गुण का चरित्र से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसे हम 'सच्चरित्र' कहते हैं, उसका निर्मायक सद्गुण ही है। चरित्र को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि यह किसी व्यक्ति की अर्जित प्रवृत्तियों का समग्र रूप है। चूँकि कुछ प्रवृत्तियाँ अच्छी होती है और कुछ बुरी इसलिये चरित्र अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। यह चरित्र का व्यापक अर्थ है और इस अर्थ में चरित्र नैतिक मूल्यांकन का विषय होता है। परंतु चरित्र का एक संकुचित अर्थ भी है जिस अर्थ में चरित्र केवल अच्छा चरित्र का ही पर्याय होता हैं। इस अर्थ में चरित्र केवल शुभ या अच्छी प्रवृत्तियों का ही समग्र रूप होता है। चूँकि शुभ या अच्छी प्रवृत्तियों को सद्गुण कहा जाता है, इसलिये चरित्र यानी सच्चरित्र सद्गुणों का ही समग्र रूप है। हम किसी व्यक्ति को चरित्रवान कहते हैं, तो इसका अर्थ यही होता है कि वह व्यक्ति सद्गुणों से परिपूर्ण है। मनुष्य के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह केवल सद्गुणों को ही हासिल करे और दुर्गुणों का परित्याग करे। मानव जीवन का लक्ष्य चरित्रवान बनना ही है।

स्पष्टतः चरित्र की उत्कृष्टता ही सद्गुण है तथा चरित्र–दोष दुर्गुण। व्यक्ति में चरित्र की उत्कृष्टता तभी संभव है जब वह अपने विचार को उच्च एवं पुनीत रखते हुये निरन्तर अभ्यास द्वारा उसे आचार में परिलक्षित करे। वस्तुतः देखा जाय तो मानव का जीवन उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है। समान परिस्थिति एवं सुख–सुविधा में विकसित दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व में, विचारों की भिन्नता के कारण असाधारण अन्तर हो जाता है। संसार की प्रायः सभी शक्तियाँ जड़ होती हैं, किन्तु विचार–शक्ति चेतन शक्ति है जो अन्य शक्तियों को गति देती है। अधोगामी विचार मन को चंचल, क्षुब्ध एवं असन्तुलित बनाती हैं जिससे बुरे चरित्र का विकास होता है तथा

व्यक्ति नारकीय यन्त्रणाओं का अनुभव करता है। जबकि सद्–विचारों के अवलम्बन से उच्च चरित्र का विकास होता है जिससे विपरीत परिस्थिति में भी व्यक्ति अपने कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होता तथा सामंजस्य एवं शांति का अनुभव प्राप्त करते रहता है। गीता में इसी सत्य का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि मन ही मनुष्य का बन्धु है और वही शत्रु भी–'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन'।[34] मानव का चरित्र विचार और आचार दोनों से मिलकर बनता है। संसार में बहुत से लोग होते हैं जिनके विचार बड़े ही उदात्त, महान् और आदर्शपूर्ण होते हैं किन्तु उनकी क्रियाएँ उनके अनुरूप नहीं होती। इसी प्रकार बहुत से लोग ऊपर से बड़े ही सत्यवादी, आदर्शवादी एवं धर्म–कर्म वाले दिखते हैं किन्तु भीतर ही भीतर कलुषपूर्ण विचारधारा बहती रहती है। सच्चा चरित्रवान वही है जो विचार और आचार दोनों को समान रूप से उच्च और पुनीत रखकर चलता है। ऐसे सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति का आन्तरिक साम्य बना रहता है।

क्या सद्गुण षिक्षणीय है ?

क्या सद्गुण की शिक्षा दी जा सकती है? यह प्रश्न प्रस्तुत सन्दर्भ में एक विचारणीय प्रश्न है, क्योंकि ग्रीक दार्शनिकों ने इस प्रश्न पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। सोफिस्टों से लेकर सुकरात और प्लेटो के दर्शनों में इस पर विस्तार से चर्चा हुई है। यहाँ हम 'प्लेटो' का एक संवाद 'प्रोटागोरस' के सन्दर्भ में इस प्रश्न पर विचार करना चाहेंगे। हम जानते हैं कि 'प्लेटो' ने अपने विचारों को अनेक संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है। रिपब्लिक उनका विश्व प्रसिद्ध डायलॉग है। सद्गुण की चर्चा उन्होंने मेनो' नामक संवाद में भी की है। इससे पता चलता है कि सद्गुण विवेचन को उन्होंने कितना महत्त्व दिया था।

'प्रोटागोरस' नामक संवाद में कई पात्र हैं। परंतु मुख्य पात्र दो हैं– प्रोटागोरस और सुकरात। प्रोटोगोरस एक सेफिस्ट था। सभी सोफिस्टों में उनका स्थान शीर्ष पर था। अपने समय के वे सबसे दिग्गज चिन्तक थे। उन्होंने ही यह घोषणा ही थी कि सभी चीजों का मापदण्ड मनुष्य है। वह यूनान के अबडेरा नामक स्थान का रहने वाला था। एक बार वह एथेन्स आया। सुकरात का एक मित्र हीप्पोक्रीटस प्रोटागोरस के एथेन्स आने की सूचना पाकर अत्यन्त उत्साहित था। वह प्रोटागोरस का शिष्य बनना चाहता था। वह बिल्कुल सुबह–सुबह सुकरात के पास आया और प्रोटोगोरस के पास उसे साथ ले चलने के लिए कहा। तब सुकरात ने हिप्पोक्रीटस से पूछा कि प्रोटोगोरस से वह क्या सीखना चाहता है। हीप्पोक्रीटस इसका कोई उत्तर नहीं दे सका। तब

सुकरात ने हीम्पोक्रीटस के साथ प्रोटागोरस के पास जाकर खुद उससे पूछा कि वे अपने शिष्यों को क्या सिखाते हैं, किस चीज की शिक्षा देते हैं, इस पर प्रोटोगोरस ने जवाब दिया कि वे अपने शिष्यों को राजनीति की शिक्षा देते हैं, यह भी सिखाते हैं कि अपने वैयक्तिक जीवन के क्रिया–कलापों का प्रबन्धन किस प्रकार किया जाना चाहिए। प्रोटोगोरस ने आगे कहा कि राजनैतिक प्रणालियाँ इस मूलभूत मान्यता पर आधारित हैं कि नागरिक सद्गुण–सम्पन्न हो सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि आपराधिक न्याय की प्रणालियाँ इस मान्यता पर आधारित हैं कि लोगों को सुधारा जा सकता है उन्हें यह सिखलाया जा सकता है कि वे सद्गुण–सम्पन्न किस प्रकार हो सकते हैं। तब सुकरात ने प्रोटोगोरस से फिर पूछा कि क्या, सद्गुणों की शिक्षा दी जा सकती है, क्या यह सिखलाया जा सकता है कि सद्गुणों को किस प्रकार आर्जित किया जा सकता है। प्रोटागोरस ने इसका भावात्मक उत्तर दिया और स्पष्ट कहा कि सद्गुणों की शिक्षा दी जा सकती है। आगे स्वयं सुकरात ने प्रोटोगोरस की मान्यता को तर्कपूर्वक सम्पुष्ट करते हुए बतलाया कि सद्गुण ज्ञान है। और यदि सद्गुण ज्ञान है, तो इसकी शिक्षा दी ही जा सकती है।[35] यहाँ उल्लेखनीय है कि प्लेटो के संवादो में एक पात्र सुकरात होता है और वह उस संवाद का मुख्य पात्र होता है। यह भी माना जाता है कि सुकरात का जो वक्तव्य होता है, वह वस्तुतः प्लेटो का ही वक्तव्य होता है।

जे भी हो, 'प्रोटोगोरस' और 'मेनो'– प्लेटो के इन दोनों संवादों में सद्गुण सम्बन्धी व्यक्त विचार आज काफी प्रासंगिक हो गए हैं। शिक्षण संस्थानों में, स्कूलों और कॉलेजों में नैतिक शिक्षा का आवश्यक रूप से प्रावधान किया जाए– ऐसी चर्चा बराबर होने लगी है। प्राचीन काल में अपने देश में गुरूकुल की परम्परा थी। शिष्य अपने गुरू के आश्रम में रह कर शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरूकुल की शिक्षा मुख्यतः सद्गुण का ही शिक्षा थी।

नीतिशास्त्र अपने आरंभिक स्वरूप में रीति–रिवाज एवं परंपराओं तक तथा अधिनितिशास्त्र नैतिक निर्णय एवं नैतिक पदो ंके विश्लेषण तक सीमित था। परंतु वर्तमान में नीतिशास्त्र केवल रिति–रिवाज, परंपराओं तथा नैतिक पदो ंके विश्लेषण तक सीमित नहीं है। परम्परा का निर्वहन वहीं तक होनी चाहिए जहाँ तक वह मानवता तथा समानता स्वतंत्रता एवं न्याय के समाजिक–राजनैतिक आदर्शों के विपरीत न हो। साथ ही, नैतिक विश्लेषण की प्रवृति मानव के किस काम का जो मानवीय समस्या के सामाधान का रास्ता दिखाने में असमर्थ हो। इस ध्येय से

वर्तमान में नीतिशास्त्र के अन्तगर्त मानवीय क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न समस्याओं का नैतिक समाधान भी ढूढ़ने का प्रयास किया जा रहा है। नीतिशास्त्र के इस प्रवृति को व्यवहारिक नीतिशास्त्र के नाम से जाना जाता है।[36] साथ ही, मानव जीवन के विविध आयामों में मापदण्ड ढूढ़ने का प्रयास किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में मानव द्वारा सार्वजनिक जीवन में किए गए आचरण की श्रेष्ठता का निर्धारण कैसे हो? वह कौन से गुण है जिसके क्रियान्वय से यह माना जाएगा कि अमुक व्यक्ति का आचरण सद्गुण सम्पन्न है? इस रूप में नीतिशास्त्र का क्षेत्र व्यक्ति, समाज, शासन राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों एवं समाधानों तक विस्तारित हो चुका है। व्यक्ति के आचरण एवं चरित्र के श्रेष्ठता पर बल देने के कारण नीतिशास्त्र के इस प्रवृति को सद्गुण नीतिशास्त्र कहा जाता है।

- **संदर्भः–**

1. वर्मा, अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूप रेखा, पृ0सं0. 02
2. वर्मा, वेदप्रकाश, अधिनीतिशास्त्र के मुख्य सिद्धांत पृ0सं0. 11–13
3. रमेंन्द्र, डॉ0, अधिनीतिशास्त्र एवं व्यवहारिक नीतिशास्त्र, पृ0सं0. 11
4. गीता, 14/21
5. डब्लू टी0 स्टेस, ए क्रिटीकल हिस्ट्री ऑफ ग्रीक फिलॉसफी, पृ0 149.
6. डब्लू टी0 स्टेस, ए क्रिटीकल हिस्ट्री ऑफ ग्रीक फिलॉसफी, पृ0 135.
7. महाभारत, 1.1.7.
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.17.
9. वैषेषिक सूत्र, 1.2.
10. डॉ. एस. राधाकृष्णन, प्राच्य धर्म एवं आध्यात्मविचार, पृ. 27–100.
11. तत्त्वार्थ सूत्र, 1.1.
12. डॉ. डी. डी. बंदिष्टे, भारतीय दर्षनिक निबन्ध (सम्पा.), मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 266
13. तत्त्वार्थ सूत्र, 9.7.

14- नन्दकिषोर देवराज, भारतीय दर्षन (सम्पा.), उत्तर प्रदेष हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 135.